

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 21: पृथु का उपदेश

21 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



उत्सवमय राजधानी में अपने सिंहासन से, राजा पृथु अपनी एकत्रित प्रजा को गम्भीर तथा सुन्दर परामर्श से सम्बोधित करते हैं — यह सिखाते हुए कि शासन एक पवित्र धरोहर है, और भगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति ही प्रत्येक आत्मा को बाँधने वाला एकमात्र कर्तव्य है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, परम भगवान् राजा पृथु के यज्ञ-मण्डप में प्रकट हुए, और पृथु ने इतनी निःस्वार्थ प्रार्थना की कि उन्होंने केवल भगवान् की महिमा सदा सुनने की याचना की। यह एकविंश अध्याय उस भक्ति के फल को दूसरों के लिए उँडेलते दिखाता है। महिमा में अपनी उत्सवमय राजधानी

लौटकर, पृथु अपनी प्रजा को एकत्र करते हैं और उन्हें गम्भीर तथा सुन्दर परामर्श से सम्बोधित करते हैं। वे सिखाते हैं कि एक शासक की शक्ति उसके अपने भोग के लिए नहीं बल्कि प्रजा की रक्षा तथा सेवा की एक पवित्र धरोहर है; कि प्रत्येक आत्मा का, चाहे किसी भी स्थिति में, सर्वोच्च कर्तव्य परम भगवान् की प्रेममयी उपासना है; और कि भगवान् के चरणों की सेवा का स्वाद हृदय को अनगिनत जन्मों की मलिनता से शुद्ध कर देता है। प्रजा, हृदय से प्रभावित होकर, उन्हें अपने संरक्षक के रूप में आदर देती है। यह शक्ति को सेवा के रूप में धारण करने का, और एक ऐसे राजा का अध्याय है जो अपनी ही महानता को अपनी प्रजा को भगवान् की ओर संकेत करने में लगाता है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 21 (एकविंश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: राजा पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में (जिसमें राजा पृथु के वचन उद्धृत हैं)
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: राजा पृथु की उत्सवमय राजधानी
- केन्द्रीय विषय: पृथु का महिमा में लौटना तथा अपनी प्रजा को धर्ममय शासन एवं भगवान् की भक्ति पर उपदेश
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 1-52
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 20 पृथु की भक्ति का मुकुट था: भगवान् उनके यज्ञ-मण्डप में प्रकट हुए, उन्हें सर्वोच्च ज्ञान सिखाया, और पृथु ने केवल भगवान् की महिमा के अनन्त श्रवण की याचना की। यह एकविंश अध्याय उन्हें उस भक्ति को घर ले जाते दिखाता है, अपनी राजधानी लौटकर तथा अपनी प्रजा की देखभाल एवं उपदेश की ओर मुड़ते हुए।

अलंकृत राजधानी

जैसे ही राजा पृथु अपनी नगरी में प्रवेश किया, वह उनके स्वागत में प्रत्येक ओर सजाई गई थी — मोतियों, पुष्प-मालाओं तथा सुन्दर वस्त्रों से लटकाई गई, स्वर्ण-तोरणों से मण्डित, और सर्वत्र अत्यन्त सुगन्धित धूप के बादलों से भरी।

मैत्रेय उवाच

मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ।

महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥ १ ॥

*maitreya uvāca mauktikaiḥ kusuma-sragbhir dukūlaiḥ svarṇa-toraṇaiḥ mahā-surabhibhir
dhūpair maṇḍitaṁ tatra tatra vai*

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: जैसे ही राजा ने प्रवेश किया, नगरी प्रत्येक ओर मोतियों, पुष्प-मालाओं, सुन्दर वस्त्रों, स्वर्ण-तोरणों, तथा अत्यन्त सुगन्धित धूप के बादलों से सजाई गई थी। (स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 1)



राजधानी राजा पृथु के गृह-स्वागत में उत्सव से सजाई गई है — प्रत्येक ओर मोती, पुष्प-मालाएँ, स्वर्ण-तोरण, तथा सुगन्धित धूप (श्लोक 1-7)।

सम्पूर्ण नगरी अपने राजा का स्वागत करते हुए हर्षित हुई, और नागरिकों ने उन्हें प्रेम के प्रत्येक चिह्न से सम्मानित किया। उस उत्सव के बीच, पृथु, अपनी महिमा में विराजमान, अपनी प्रजा को उनके स्थायी कल्याण के लिए उपदेश देने मुड़े।

राजा का सुन्दर परामर्श

पृथु का वचन सुन्दर तथा समृद्ध अलंकारों से युक्त था, स्निग्ध तथा परिष्कृत, गहन तथा अविचल। वे, मानो, सुनने वाले सबके कल्याण के लिए बोले, अपनी अनुभूति से वह सत्य व्यक्त करते हुए जो वे उन्हें देना चाहते थे।

चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविकलवम् ।

सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥ २० ॥

*cāru citra-padam ślakṣṇam mṛṣṭam gūḍham aviklavam sarveṣām upakārārthaṁ tadā anuvadann
iva*

अर्थ: उनका वचन सुन्दर तथा समृद्ध अलंकारों से युक्त था, स्निग्ध, परिष्कृत, गहन, तथा अविचल; वे, मानो, सबके कल्याण के लिए बोले, अपनी सत्य की अनुभूति व्यक्त करते हुए। (स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 20)



महिमा में विराजमान, राजा पृथु अपनी एकत्रित प्रजा को गम्भीर तथा सुन्दर परामर्श से सम्बोधित करते हैं, यह सिखाते हुए कि एक शासक की शक्ति उसकी प्रजा की सेवा तथा रक्षा की एक पवित्र धरोहर है (श्लोक 8-24)।

फिर उन्होंने अपने ही पद की सादी संरचना अपने ही शब्दों में रखी।

अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः ।

रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥ २२ ॥

aham daṇḍa-dharo rājā prajānām iha yojitaḥ rakṣitā vṛttidaḥ sveṣu setuṣu sthāpitā pṛthak

अर्थ: भगवान् की कृपा से मुझे इस सिंहासन पर बिठाया गया है, हाथ में शासन-दण्ड लिए हुए — प्रजा की रक्षा करने, उनकी जीविका सुनिश्चित करने, तथा प्रत्येक को वैदिक व्यवस्था द्वारा नियत स्थान में स्थिर रखने के लिए नियुक्त। (स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 22)

एक राजा का अधिकार, उन्होंने आगे कहा, उसके अपने भोग की छूट नहीं, बल्कि एक पवित्र धरोहर है: वह भगवान् द्वारा अपनी प्रजा की रक्षा करने तथा उनकी जीविका सुनिश्चित करने को नियुक्त है, और वह इस भार को केवल भगवान् की ही कृपा से पूर्ण कर सकता है — अपने बल से नहीं (श्लोक 21-23)। जो शासक अपनी प्रजा की सच्ची देखभाल से सेवा करता है वह उनके पुण्य-फल में भागी होता है; परन्तु जो केवल कर वसूलता है और उन्हें उनके कर्तव्य नहीं सिखाता, वह उनके पाप में भागी होता है, क्योंकि मृत्यु के पश्चात् किसी कर्म का फल उसके कर्ता, निर्देशक, तथा समर्थक — तीनों में समान रूप से बाँटता है (श्लोक 24, 26)। और उन्होंने अपनी प्रजा से भी धर्ममय जीवन, ब्राह्मणों तथा बुद्धिमानों के प्रति श्रद्धा, और इन्द्रियों के क्षणभंगुर सुखों से विरक्ति का आग्रह किया।

उपदेश का हृदय

फिर पृथु अपने परामर्श के हृदय तक आए: प्रत्येक आत्मा के सर्वोच्च कल्याण के रूप में परम भगवान् की प्रेममयी उपासना। भगवान् के चरणों की सेवा का स्वाद, उन्होंने सिखाया — जो भक्त में दिन-प्रतिदिन बढ़ता है — शीघ्र ही अनगिनत जन्मों में जमा मन की मलिनता को नष्ट कर देता है, ठीक जैसे भगवान् के अपने चरणांगुष्ठ से निकली पवित्र नदी सबको धो देती है।

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना-
मशेषजन्मोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती
यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित् ॥ ३१ ॥

*yat-pāda-sevābhirucis tapasvinām aśeṣa-janmopacitaṁ malaṁ dhiyaḥ sadyaḥ kṣiṇoty anvaham
edhatī satī yathā pad-aṅguṣṭha-viniḥsṛtā sarit*

अर्थ: भगवान् के चरणों की सेवा का स्वाद, जो भक्त में दिन-प्रतिदिन बढ़ता है, अनगिनत जन्मों में जमा मन की मलिनता को शीघ्र नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् के चरणाङ्गुष्ठ से निकली पवित्र नदी सबको धो देती है। (स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 31)

इसलिए, उन्होंने सबसे आग्रह किया कि, चाहे किसी भी स्थिति में हों, वे उस एक भगवान् की उपासना अपने मन, वचन, तथा देह को जोड़कर तथा अपने ईमानदार कर्मों से, निष्कपट भाव से करें; क्योंकि उनके चरण-कमल प्रत्येक योग्य अभिलाषा को पूर्ण करते हैं, ताकि प्रत्येक अपने ही कर्तव्य के अनुरूप सिद्धि प्राप्त करे।

तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभि-
र्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ।
अमायिनः कामदुग्धाङ्घ्रिपङ्कजं
यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ ३३ ॥

*tam eva yūyaṁ bhajatātma-vṛttibhir mano-vacaḥ-kāya-guṇaiḥ sva-karmabhiḥ amāyinaḥ kāma-
dughāṅghri-pankajaṁ yathādhikārāvasitārtha-siddhayaḥ*

अर्थ: उस एक भगवान् की ही उपासना करो, अपनी समस्त शक्तियों — मन, वाणी, तथा शरीर — से तथा अपने कर्मों से, निष्कपट भाव से; उनके चरण-कमल प्रत्येक अभिलाषा पूर्ण करते हैं, ताकि तुम अपने ही स्थान के अनुरूप सिद्धि प्राप्त करो। (स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 33)



पृथु अपने उपदेश के हृदय तक आते हैं: कि मन, वाणी, शरीर, तथा ईमानदार कर्म से परम भगवान् की प्रेममयी उपासना सर्वोच्च कल्याण है और हृदय को अनगिनत जन्मों के भार से शुद्ध करती है (श्लोक 25-40)।

ब्राह्मणों तथा वैष्णवों के प्रति आदर

पृथु इससे भी आगे बढ़े। किसी भी देवता के नाम पर अर्पित यज्ञ, उन्होंने समझाया, अन्ततः उसी एक परम भगवान् तक पहुँचता है तथा उन्हें ही तृप्त करता है, जो सब यज्ञों के अकेले स्वामी तथा भोक्ता हैं (श्लोक 34-36)। फिर भी उन्होंने चेताया कि एक धर्मनिष्ठ राजा को भी कभी अपनी शक्ति ब्राह्मणों तथा वैष्णवों पर नहीं चलानी चाहिए, जिनकी सहनशीलता, तपस्या, तथा विद्या उन्हें राजसत्ता की पहुँच से परे रखती है (श्लोक 37)। उनका तर्क केवल राजोचित सावधानी पर टिका नहीं है — वे इसे स्वयं भगवान् के आचरण में आधारित करते हैं। स्वयं परम भगवान्, जो अनादि तथा आत्मनिर्भर हैं, जिन्हें किसी से कुछ भी नहीं चाहिए, उन्होंने भी ब्राह्मणों के चरणों में झुककर अपनी अक्षय सम्पदा तथा जगत्-पावन कीर्ति अर्जित की।

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो
नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ।
अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो
जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥ ३८ ॥

*brahmaṇya-devaḥ puruṣaḥ purātano nityam harir yac-caraṇābhivandanāt avāpa lakṣmīm
anapāyinīm yaśo jagat-pavitraṁ ca mahattamāgraṇīḥ*

अर्थ: परम पुरुष, अनादि तथा महानों में अग्रणी, ब्राह्मणों के चरणों में उपासना करके ही अपनी अक्षय महिमा तथा विश्व को पावन करने वाली कीर्ति प्राप्त करते हैं। (स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 38)

यदि स्वयं भगवान् अपने भक्तों के प्रति आदर से ही महिमामण्डित होते हैं, पृथु तर्क करते हैं, तो कोई भी — चाहे कितना भी शक्तिशाली हो — इस कर्तव्य से ऊपर नहीं है। ब्राह्मणों तथा वैष्णवों की सेवा में बिताया गया जीवन, वे जोड़ते हैं, किसी भी अग्नि-यज्ञ से अधिक शीघ्रता से हृदय को शुद्ध करता है, क्योंकि यह अकेली अग्नि के माध्यम से नहीं, बल्कि भगवान् के जीवित भक्तों के मुख के माध्यम से भगवान् तक अर्पण पहुँचाता है (श्लोक 40-41)।

राजा की विनम्र प्रार्थना

अपनी समस्त महानता के बावजूद, पृथु किसी दम्भ के साथ नहीं बल्कि दूसरों के भले तथा अपने पर कृपा के लिए एक विनम्र प्रार्थना के साथ समाप्त हुए। समृद्धि, उन्होंने कहा, स्वाभाविक रूप से उसी की ओर आकर्षित होती है जिसकी एकमात्र सम्पत्ति सद्गुण ही है — ईमानदार आचरण, कृतज्ञ हृदय, तथा वृद्धों एवं गुरुजनों के प्रति सम्मान। और उन्होंने प्रार्थना की कि ब्राह्मणों तथा गौओं का समुदाय, और जनार्दन — स्वयं भगवान् — अपने समस्त पार्षदों सहित, उन पर प्रसन्न हों।

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं

वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु सम्पदः ।

प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च

जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥ ४४ ॥

guṇāyanam śīla-dhanam kṛta-jñam vṛddhāśrayam saṁvṛṇate 'nu sampadaḥ prasīdatām brahma-kulam gavām ca janārdanaḥ sānucaraś ca mahyam

अर्थ: (पृथु ने प्रार्थना की:) समृद्धि स्वयं ही उसके पास आती है जो सद्गुणों का धाम है, जिसका धन सुशील है, जो कृतज्ञ है और अपने वृद्धों को आश्रय देता है; ब्राह्मणों तथा गौओं का समुदाय, और जनार्दन अपने पार्षदों सहित, मुझ पर प्रसन्न हों। (स्कन्ध 4, अध्याय 21, श्लोक 44)



उनके परामर्श तथा विनम्रता से गहराई तक द्रवित, प्रजा राजा पृथु को एक पिता तथा रक्षक के रूप में सम्मान देती है, और वे एक विनम्र प्रार्थना से उन्हें तथा ब्राह्मणों एवं गौओं को आशीर्वाद देते हैं (श्लोक 41-52)।

प्रजा, उनके विवेक तथा विनम्रता से गहराई तक द्रवित, उन्हें एक पिता तथा रक्षक के रूप में सम्मानित किया, और बदले में उन्हें आशीर्वाद दिया। इस प्रकार एकविंश अध्याय एक ऐसे राज्य के साथ समाप्त होता है जो न केवल समृद्ध बल्कि उपदेशित भी है — इसके राजा ने अपनी ही महानता को प्रत्येक हृदय को भगवान् की ओर मोड़ने में लगाया — और उन महान् ऋषियों की भेंट के लिए तैयार जो अगला अध्याय लाएगा।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अधिकार एक पवित्र धरोहर है, व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं। पृथु सिखाते हैं कि एक राजा की शक्ति प्रजा की रक्षा तथा सेवा के लिए दी जाती है, उसके अपने भोग के लिए नहीं। समस्त अधिकार एक ऐसा भार है जिसका उत्तर देना है, न कि व्यय करने का कोई पुरस्कार (श्लोक 21-23)।
2. शासक शासितों के कर्मों में भागी होता है। जो राजा प्रजा की भलाई का ध्यान रखते हुए शासन करता है, उसे उनके सत्कर्मों का फल भी मिलता है; जो राजा केवल कर वसूलने में लगा रहे और उन्हें धर्म न सिखाए, उसे उनके पाप का भार भी उठाना पड़ता है। उत्तरदायित्व हमें अपनी देखरेख के जनों के भले-बुरे से बाँधता है (श्लोक 24, 26)।
3. भगवान् की उपासना प्रत्येक स्थिति का सर्वोच्च कल्याण है। जीवन में हमारा स्थान चाहे जो हो, पृथु कहते हैं, हमारा सर्वोच्च कर्तव्य मन, वाणी, शरीर, तथा ईमानदार कर्म से भगवान् की उपासना है। भक्ति कुछ लोगों का आह्वान नहीं बल्कि सबकी सिद्धि है (श्लोक 33)।
4. भगवान् की सेवा हृदय को अनगिनत जन्मों से शुद्ध करती है। भगवान् के चरणों की सेवा का स्वाद अनेक जन्मों की मलिनता को धो देता है, उनके चरण से निकली पवित्र नदी की भाँति। जो हम अपने प्रयत्न से कभी शुद्ध न कर सकें, वह उनकी सेवा हममें शुद्ध कर देती है (श्लोक 31)।
5. स्वयं भगवान् भी अपने भक्तों के आगे झुकते हैं। अनादि परम पुरुष ने ब्राह्मणों के चरणों की उपासना करके ही अपनी अक्षय महिमा प्राप्त की। यदि भगवान् स्वयं इस प्रकार अपनी कीर्ति पाते हैं, तो कोई भी छोटा प्राणी सच्चे सन्तों को आदर देने के कर्तव्य से ऊपर नहीं है (श्लोक 38)।

6. सच्ची महानता विनम्रता तथा आशीर्वाद में समाप्त होती है। अपनी समस्त शक्ति के बावजूद, पृथु ब्राह्मणों तथा गौओं के भले के लिए प्रार्थना करके तथा भगवान् की कृपा माँगकर समाप्त करते हैं। सच्ची महानता, अन्ततः, सेवा तथा प्रार्थना में झुक जाती है (श्लोक 44)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

राजा पृथु के उपदेश में सबसे उल्लेखनीय वह दिशा है जिसमें वे अपनी ही महानता को संकेत करते हैं। एक निम्नतर शासक, एक अलंकृत नगरी में विजय में लौटकर, उस क्षण का प्रयोग स्वयं को बढ़ाने में कर सकता था। पृथु उसका प्रयोग भगवान् को बढ़ाने में करते हैं। उनके हाथों में शक्ति, महिमा, तथा उनकी प्रजा का प्रेम पूर्णतः है — और वे उस सबको अपनी प्रजा की दृष्टि स्वयं से हटाकर भगवान् की ओर मोड़ने में व्यय करते हैं। यही किसी भी महानता की सच्ची परीक्षा है जो हमें दी जाती है: यह नहीं कि हम उसके द्वारा क्या संचित करते हैं, बल्कि यह कि हम उससे लोगों को किस ओर संकेत करते हैं। पृथु सिखाते हैं कि उनका सिंहासन ही एक धरोहर है, कि उनकी शक्ति सेवा के लिए है, और कि वे अपनी प्रजा के लिए सबसे उच्च वस्तु उन्हें समृद्ध करना नहीं बल्कि उन्हें भगवान् की उपासना की ओर ले जाना कर सकते हैं। और ध्यान दें कि अध्याय कैसे समाप्त होता है: राजा को अपनी प्रजा से ऊपर उन्नत नहीं, बल्कि ब्राह्मणों तथा गौओं और अपने पर भगवान् की कृपा के लिए विनम्र प्रार्थना में झुका हुआ। अध्याय की चाप एक सम्यक् रूप से धारित महानता की चाप है — शक्ति प्राप्त, सेवा में व्यय, और विनम्रता में लौटाई गई। यह हमसे पूछता है कि, हमारे पास चाहे जो छोटा अधिकार या प्रभाव हो, हम उसे उसी प्रकार धारण करें: एक धरोहर के रूप में, दूसरों की सेवा के लिए, और प्रत्येक हृदय को, अपने सहित, भगवान् की ओर वापस संकेत करने के साधन के रूप में।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने अधिकार को एक धरोहर के रूप में धारण करें। जिस भी क्षेत्र में आपका प्रभाव है — बच्चों, सहकर्मियों, एक परिवार, एक समुदाय पर — सचेत रूप से यह न पूछें कि “मैं इससे क्या पा सकता हूँ?” बल्कि “मैं यहाँ किसकी सेवा के लिए हूँ?” आज उस क्षेत्र में सेवा का एक ठोस कार्य करें, और उसे इन शब्दों के साथ भगवान् को अर्पित करें — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, जैसे पृथु ने अपना शासन अर्पित किया। फिर, उनके केन्द्रीय उपदेश की भावना में, अपने दिन के किसी साधारण कार्य को — अपना काम, कोई कर्तव्य — भगवान् को समर्पित करें, उसे ईमानदारी तथा निष्कपटता से उपासना के एक कार्य के रूप में करते हुए, ताकि आपका दैनिक श्रम ही, जैसे पृथु ने सिखाया, उनके चरण-कमलों की सेवा का एक मार्ग बन जाए। अपने उत्तरदायित्वों को सेवा के रूप में तथा अपने कार्य को उपासना के रूप में धारण करने में, आप उसी राजा के मार्ग पर चलते हैं जिसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति प्रजा को ईश्वर-भक्ति की ओर प्रेरित करने में लगा दी।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का एकविंश अध्याय राजा पृथु को अपनी ही भक्ति के फल को अपनी प्रजा के कल्याण में उँडेलते दिखाता है। अपने पुष्प-सज्जित राजधानी में लौटकर, वे सम्पूर्ण सभा के समक्ष खड़े होकर शासन के कर्तव्यों पर विस्तार से बोलते हैं। राजपद, वे स्पष्ट करते हैं, भगवान् के प्रति उत्तरदायी एक भार है, कभी भी आत्म-भोग की अनुमति नहीं; एक शासक अपनी प्रजा को होने वाले भले या बुरे के लिए उत्तरदायी रहता है; तथा प्रत्येक आत्मा, चाहे उसकी स्थिति जो हो, मन, वाणी, शरीर, तथा ईमानदार कर्म से परम भगवान् की प्रेममयी उपासना के लिए बुलाई गई है — एक ऐसी सेवा जो हृदय को अनगिनत जन्मों के भार से शुद्ध करती है। वे यह भी जोड़ते हैं कि स्वयं भगवान् भी ब्राह्मणों के चरणों में झुककर ही शाश्वत महिमा तक पहुँचे, इसलिए सच्चे सन्तों के प्रति आदर किसी के लिए भी, चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, तुच्छ नहीं है। अपनी इतनी महानता के बावजूद, पृथु अहंकार में नहीं बल्कि झुककर समाप्त करते हैं, द्विजों तथा गौओं की सद्भावना तथा जनार्दन की अपने

ऊपर कृपा की कामना करते हुए। प्रजा उन्हें एक पिता तथा रक्षक के रूप में सम्मान देती है। इस प्रकार अध्याय शक्ति को सेवा के रूप में धारण करना तथा महानता को दूसरों को भगवान् की ओर संकेत करने में व्यय करना सिखाता है — और हमें आने वाले अध्याय में ऋषियों की भेंट के लिए तैयार करता है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

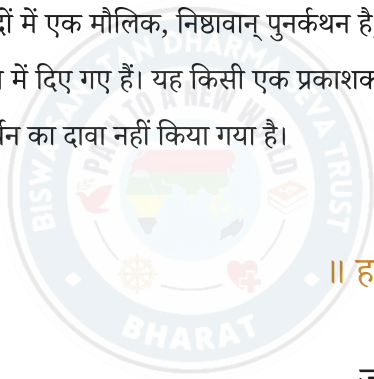
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, एकविंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-21-king-prithus-teaching-to-his-subjects-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट